(सिंघई किशनसिंह पाटनी कृत)

श्री भद्रबाहु स्वामी चरित्र

(हिन्दी पद्यमय)

सम्पादक:—

श्री क्षुल्लक शीतलसागरजी महाराज

प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन पुस्तकालय

सांगानेर (जयपुर)

सर्व प्रथम १००० | श्री वीर नि० २४९२ वि० सं० २०२३, अक्टूबर १९६६ | मूल्य ६० पैसे

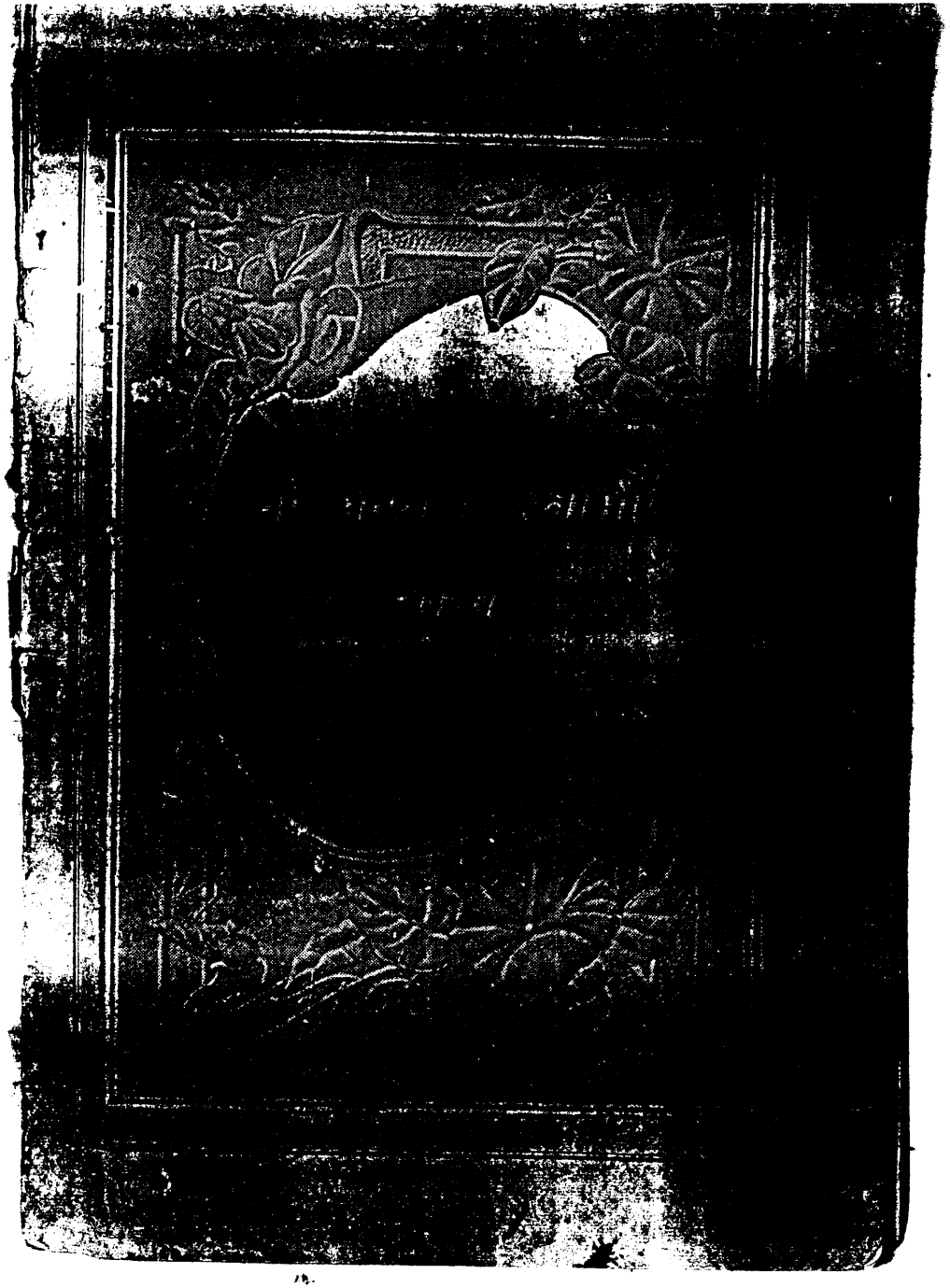

थूलपनें भाषी तिन्हें, सूक्षम बात अनेक ।
जिन वच कथित उलंघि के, ठानी करि मत टेक ॥१५०॥
रचै ग्रन्थ निज बुद्धि तैं, संशयकारी जेह ।
तिनकी की परतीति जिन, संशय पाड़े तेह ॥१५१॥
श्वेताम्बर को भक्त इक, लोकपाल नरराय ।
पढ़ त्रियलेखा चित्र युत, सुता एक तसु थाय ॥१५२॥
नकुल देवि तसु नाम तो, रूप रु लक्षण सार ।
श्वेताम्बर गुरु पास सो, ग्रन्थ अनेक प्रकार ॥१५३॥
पढ़कर भई प्रवीण सो, यौवनवन्त अनूप ।
सुरतिय तैं शोभा अधिक, लोकपाल लखि भूप ॥१५४॥

(चौपई)

तब मन मांहि चिन्त करेय, कन्या व्याहन बुद्धि धरेय ।
द्रव्यवन्त कर्नाटक देश, ताको पति भूपाल नरेश ॥१५५॥
ताको सो परणावत भयो, नृप भूपाल स्वपुरि ले गयो ।
सब नारिनि उपरि सा बाल, पटराणी कीनी तत्काल ॥१५६॥
पुण्य उदय से नृप पटतिया, दोन्या तणा चित्त हर्षिया ।
नाना विधि के भोग करन्त, दिन बीतत सो नांहिं लखन्त ॥१५७॥
एक दिवस अवसर को पाय, राणी जोड़ि पानि शिरनाय ।
भूपति सों इम विनती करी, भो स्वामी सुनियो चित धरी ॥१५८॥
मेरे पितातणे पुर मांहिं, मुझ गुरु रहते हैं शक नांहिं ।
धर्मपन्थ बढ़वारी काज, यहां बुलाओ तिन महाराज ॥१५९॥

नी बैन सुण्या नरराय, तिन्हें बुलावन मन ठहराय ।
त्री बुद्धिवान इक सार, तासों कह्यो इहै व्यवहार ॥१६०॥
ब सो बहु विभूति ले लार, लायो जाय श्वेतपट धार ।
ादर सों बहु विनय करेय, नरपति जब आगमन सुनेय ॥१६१॥
र्पित ह्वै सेना बहु लेय, आडम्बर बहु-भांति करेय ।
न सन्मुख लावन के काज, चाल्यो तबै सौंज को साज ॥१६२॥

(चाल-छन्द)

ब दूर थकी नृप पेखि, उनको जो रूप विशेखि ।
विस्मय मन मांहि आनैं, तब ऐसे बैन बखाने ॥१६३॥
तो नांहिं निर्ग्रन्थ, इह कैसो नूतन-पंथ ।
वसन धरें करि दंड, भिक्षा पात्रादि प्रचण्ड ॥१६४॥
त्यादि परिग्रह मण्डित, इनको नहीं सेवे पण्डित ।
तैं हम पूजन योग, जावो नहिं भलो प्रयोग ॥१६५॥
सो विचार नरराई, बाहुडि के मन्दिर आई ।
राणी सो एम कहन्त, देखे तुम सुगुरु महन्त ॥१६६॥
ो महा कुमारग सेवे, नहिं धर्म अधर्महिं बेवैं ।
जिन कथित वचन करि हीन, मति हीन भेष धरि दीन ॥१६७॥
समकित तैं भ्रष्ट सु जानी, चारित्र की नांही निशानी ।
रिग्रह-ग्रह करिके ग्रसिया, जे इन्द्रिय-विषय निरसिया ॥१६८॥
ायक नहीं वन्दन करनें, यातैं फिरि आये घर नैं ।
राणी वच सुन नर राय, तत्क्षण निज गुरु नखि जाय ॥१६९॥

कर नमस्कार कर-जोरी, गुरु सुनिये बिनती मोरी ।
सबही परिग्रह को छोडी, निर्ग्रन्थ होहु मन-मोडी ॥१७०॥
इह पद स्वर्गादिक दानी, शिव[1] सुख दातार निदानी ।
पूजित तिहुँ लोक सु नित्त, धारो ह्वै महापवित्र ॥१७१॥

(दोहा)

तब तिन राणी हठ-वचन, सुन इम कियो करार ।
दण्ड कम्बलो अन्य कछु, तज्यो न लाई वार ॥१७२॥
करहि कमंडलु धारियो, कोमल पीछी लेय ।
श्वेत वसन ठहराइयो, ऐसो लिङ्ग धरेय ॥१७३॥

(चौपई)

ता पीछे सुनिकै भूपाल, तिन सन्मुख चाल्यो तत्काल ।
बहुत विभूति लार ले जाय, शीस नवाय नमें तिन पाय ॥१७४॥
भक्ति भाव युत करि सन्मान, पुर में ल्यायो धारी मान ।
ता पीछे नृप अरु पुरलोक, पूजित है सबही के थोक ॥१७५॥
रूप दिगम्बर को इम करयो, श्वेत वसन युत मुनिपद धरयो ।
गुरु उपदेशित शिक्षा सार, तासों रहित भेष सविकार ॥१७६॥
इनकी संगति तैं अधिकार, पापी मारग हीन लबार ।
नटवत भेष धरे तिन घणे, जेम भंड[2] बहु[3] रूपे बणे ॥१७७॥
श्वेत वसन मत संघ जु लयो, कलिकाल प्रभावहिं ठयो ।
ता पीछे तिहिं मत अधिकार, भेद पड़े नाना परकार ॥१७८॥

१-मोक्ष सुख देने का कारण । २-भांड । ३-बहुत भेष बनाते है ।

शुभ को त्यागि अशुभ आचार, पकरयो धरि मानस अहंकार ।
कई गह्यो न छोड्यो चहें, के निज कल्पित अधिको गहैं ॥१७९॥
जिहं जिहं के मन भायो जिसो, तिहं २ मत परकास्यो तिसो ।
पूरव बन्ध विपाक हि लही, मिथ्या मोह मलिनता गही ॥१८०॥
फैल गयो मत हीन अपार, नरक-निगोद बंध को कार[1] ।
ता पीछे हुई सो सुनो, महापाप कौ मारग मुणों ॥१८१॥

(दोहा)

नृपति विक्रमादित्य कौ, मरण भये तैं लेय ।
पन्द्रह सै ऊपरि वरष, सत्ताईस गिनेय ॥१८२॥
बीतें परि परकट भयो, सितपट धारनि मांहि ।
लूंको मत फटि के नयो, पाप रूप शक नांहि ॥१८३॥
धर्म प्रभावन काज कों, लोपि थापि विपरीत ।
जिन-प्रतिमा पूजादि की, छांड़ि दई शुभ रीत ॥१८४॥

(चाल-छन्द)

इक देश नाम गुजराज, तहं जन धनवंत बसात[2] ।
तामें इक नगर सुजानो, अणहपुर पटण महानो ॥१८५॥
तहं पो खाड कुल जान, लुकौज सु नाम कहान ।
सो मान पंडिताई करि, श्वेताम्बर-मत हिय में धरि ॥१८६॥
ताके सब मरमहिं जानें, ईर्ष्या जु परस्पर ठानें ।
तब श्वेताम्बर-मत-धार, उपजावे कोप अपार ॥१८७॥

१-करने वाला । २-रहते हैं ।